भक्तिमयी शबरी

अखिलब्रह्माण्डनायक निखिललोकसौन्दर्यसारसर्वस्व परमात्मा के दिव्य चरित्रों के रहस्य गरुड जैसे महाज्ञानियों को भी सन्देहसिन्धु में निमज्जित कर देते हैं। हाँ, हरिवाहन होने से उनके उस सन्देहसिन्धु का शोषण भक्तराज काकभुसुण्डि द्वारा होता है। भगवान् के चरित्रों का रहस्योद्घाटन भक्तिप्रवणचेता सन्तों से होता है, केवल शब्दभारवाहीगर्दभों से नहीं। इसी प्रकार भक्तों के चरित्र का यथार्थज्ञान भक्तिमत्पुरुषों को ही होता है। भक्तिविधुर पण्डित अपनी मेधा से वस्तुस्वरूप के निर्धारण हेतु यत्नशील तो अवश्य रहते हैं,पर परमात्मतत्त्व का ग्रहणकर नहीं पाते;क्यों-कि परमात्मतत्त्व मेधा से गृहीत नहीं होता–'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन'–क०उ०२/२३। 'तस्मिन् तज्जने भेदाभावात्'–ना०भ०सू०२/१७। 'भगवान् और उनके भक्तोंमें भेद नहीं होता'। इसलिए

भक्तों के चरित्र को मात्र मेधा से यथावत् समझना अशक्य है। उसके लिए भक्ति चाहिए, जिससे भक्तमालकार नाभाजी की भाँति भक्तों का ज्ञान स्वान्त में स्वयं समुद्भूत हो।

भक्तिमयी शवरी को अध्यात्मरामायण, श्रीरामचरितमानस प्रभृति आर्षग्रन्थों में हीनजातिसमुद्भूत शबरजाति की महिला माना गया है। चूंकि इन ग्रन्थद्वय के प्रणेता भक्तिसमाप्लावितस्वान्त हैं, अतः शवरी के स्वरूप को अपनी तपःपूतवाणी से निरूपित कर सके। पर विद्याभिमानी जन इनके वाग्वैभव पर विश्वास न करने के कारण आज तक शवरी स्वरूपनिर्धारणसिन्धुतट के समीप भी न पहुँच सके।

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण के प्रख्यात टीकाकार श्रीगोविन्दराज जी शवरी को शबरजातीया स्वीकार करते हैं। महापण्डित श्रीनागेश भट्ट शवरी उसकी संज्ञा मानते हैं, जाति के विषय में वे मौन हैं। "मौनं स्वीकारलक्षणम्" उक्ति के अनुसार शवरी शवरजाति की नारी इन्हें भी मान्य है। श्रद्धेय स्वामी करपात्री जी के अनुसार शवरी ब्राह्मणी है। इनका कथन है कि रामायण के अरण्यकाण्ड में उसे श्रमणी कहा गया है, जिसका अर्थ सन्न्यासिनी है। सन्न्यास में अधिकार केवल ब्राह्मण का है, अतः वह ब्राह्मणी है। इस प्रकार विप्रतिपत्ति वाक्यों से संशय होता है कि शवरी शवरजतीया हैं या नहीं ? वे ब्राह्मणी हैं या अब्राह्मणी (शबरजतीया) ? इसके निर्णय हेतु विचार किया जाता है; क्योंकि विचार करने के वाद एक निर्णय पर पहुँचने से सन्देह नष्ट हो जायेगा।

❀ शबरी सन्न्यासिनी नहीं थीं ❀

भगवान् मनु के अनुसार सन्न्यास में मात्र ब्राह्मण का ही अधिकार है, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र का नहीं; क्योंकि "आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात" –मनु ६/२५, इस उपक्रम वाक्य में ब्राह्मण द्वारा सन्न्यास ग्रहण का उल्लेख करके—"एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः" –मनु० ६/९७, इस उपसंहारवाक्य में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्न्यास ये चार धर्म ब्राह्मण के ही वतलाये गये हैं। अतः उपक्रमोपसंहारन्याय से सन्न्यास आश्रम में मात्र ब्राह्मण का ही अधिकार सिद्ध होता है। "ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति" श्रुति भी सन्यास में मात्र ब्राह्मण का ही अधिकार बतलाती है, द्विजाति मात्र का नहीं। श्रीशंकराचार्यजी भी "ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थाय

भैक्षचर्यं चरन्ति"–वृह०उ० ३/५/१,के भाष्य में "ब्राह्मणानामेवाधिकारो व्युत्थानेऽतो ब्राह्मणग्रहणम्" से सन्न्यास के केवल ब्राह्मण का ही अधिकार मानते हैं ।

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण से भी सन्न्यास में केवल ब्राह्मण का ही अधिकार सुनिश्चित होता है; क्योंकि विदेहनन्दिनी के अपहरण हेतु रावण परिव्राजक (सन्न्यासी) का रूप धारण करके आता है। उस समय वह स्वच्छ काषाय वस्त्र, शिर पर शिखा, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण किये रहता है—

"तदासाद्यदशग्रीवःक्षिप्रमन्तरमास्थितः।अभिचक्रामवैदेहींपरिव्राजकरूपधृक्। श्लक्ष्णकाषायसंवीतःशिखी छत्री उपानही। वामे चांऽसेऽवसज्याथ शुभे यष्टि-कमण्डलू।। परिव्राजकरूपेण वैदेहीमन्ववर्तत ।।"–वा.रा.अर.का.४६/२-३-४

'उस समय रावण अवसर पाकर जनकनन्दिनी के समीप सन्न्यासी रूप धारण करके गया । वह स्वच्छ काषाय वस्त्र धारण किये हुए था, उसके शरीर पर शिखा, छाता तथा पैरों में जूते थे, वायें कन्धे पर त्रिदण्ड और कमण्डलु थे । इस प्रकार सन्न्यासी वेश में वह वैदेही के समीप पहुँचा'। सन्न्यासी रूप में आश्रम पर दशग्रीव को उपस्थित देखकर जानकी जी बार-बार उसे ब्राह्मण शब्द से सम्बोधित करती हैं—

इयं वृषी ब्राह्मण काममास्यताम् । ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत् माम्। एतद् ब्राह्मण रामस्यधृतव्रतमनुत्तमम् । विचराम द्विजश्रेष्ठ। एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसिद्विज।-वा.रा.अर.का.४६/३६,४७/२-१८-२२-२४

यदि सन्न्यास में क्षत्रिय एवं वैश्यादि का भी अधिकार होता तो सन्न्यासी के पूर्वोक्त वेशभूषा के दर्शनमात्र से जनकपुत्री उसे बार-बार ब्राह्मण ही क्यों कहतीं ? उन्होंने सन्न्यासी रूप में आये रावण को बार-बार ब्राह्मण ही कहा है । अतः सन्न्यास में मात्र ब्राह्मण का ही अधिकार शास्त्रसिद्ध है । श्रीराम-काल में मात्र ब्राह्मण ही सन्न्यास लेते थे, आज कल जैसे चमार, सियार आदि नहीं । अत एव जानकी जी सन्न्यासी वेश के दर्शन से ही उसे ब्राह्मण कहीं । शवरी श्रीराम-काल में थीं । उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था अति सुदृढ़ थी, अतः तात्कालिक परिस्थिति के आधार पर ही वे सन्न्यासिनी थीं या नहीं ? आगे निर्णय किया जायेगा ।

भगवान् वादरायण भी मनु की भाँति सन्न्यास में मात्र ब्राह्मण का ही अधिकार मानते हैं—

ब्राह्मणस्य तु चत्वारस्त्वाश्रमा विहिताः प्रभो। } म०भा०शा०
वर्णास्तान्नानुवर्तन्ते त्रयो भारतसत्तम ॥ } प० ६२/२
चतुर्थं ब्राह्मणैर्वृतम्। —म०भा०शा०प०६१/२।

—'हे प्रभो ! ब्राह्मण के लिए चार आश्रम शास्त्रविहित हैं। हे भारतसत्तम ! अन्य तीनों वर्ण उन चारों आश्रमों को ग्रहण नहीं करते हैं। ब्राह्मणों द्वारा चतुर्थ आश्रम भी स्वीकृत है'। इस प्रकार मनुस्मृति, श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण तथा महाभारत से निर्णीत हुआ कि सन्न्यास नामक चतुर्थ आश्रम में मात्र ब्राह्मण का ही अधिकार है। सन्न्यास आश्रम की वेशभूषा अभी वाल्मीकीयरामायण द्वारा प्रदर्शित की जा चुकी है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी त्रिदण्ड और कमण्डलु आदि वस्तुएं सन्न्यासियों से ग्राह्य बतलायी गयी हैं —

सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः। } याज्ञवल्क्य स्मृति
एकारामः परिव्रज्य..... ..... ॥ } व्यवहाराध्याय–५८

महर्षि अङ्गिरा भी कहते हैं—

यतेर्लिङ्गं प्रवक्ष्यामि येनासौ लक्ष्यते यतिः।
ब्रह्मसूत्रं त्रिदण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारकम् ॥
शिक्यं पात्रं वृषीचैव कोपीनं कटिवेष्टनम्।
यस्यैतद्विद्यतेलिङ्गं स यतिर्नेतरो यतिः ॥

उसना का कथन—

ब्रह्मसूत्रपरित्यागाद्ब्रह्मचारी गृही वनी। } शतदूषणी यतिलिङ्ग
परिव्राट् चापि पतति तस्मान्न परित्यजेत् ॥ } भेदवाद से उद्धृत

इन स्मृतिवचनों में त्रिदण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत आदि सन्न्यासी के धारणयोग्य चिह्न बतलाये गये हैं। श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणमें वर्णित रावण की सन्न्यासी वेशभूषा से इसकी पुष्टि होती है। प्राचीनकालिक समाज में सन्न्यासी के इसी वेश की प्रतिष्ठा थी। इसीलिए तो सद्यः विश्वास समुत्पत्ति हेतु रावण त्रिदण्डी वैष्णववेश में जानकीजी के समीप आया था।

कुछ लोग "कुटुम्बं पुत्रदारांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः। केशान् यज्ञोपवीतं च त्यक्त्वा गूढश्चरेन्मुनिः" इस वचन तथा "सशिखान् केशान् निकृन्त्य विसृज्य यज्ञोपवीतं" प्रमाण से सन्न्यासी के लिए शिरोमुण्डन एवं यज्ञोपवीत का त्याग स्वीकार करते हैं। इन दोनों पक्षों में सन्न्यास के पूर्व यज्ञोपवीत धारण सिद्ध है।

शबरी चूंकि स्त्री है और स्त्री तथा शूद्र का यज्ञोपवीत शास्त्रविहित नहीं है। अतः इन दोनों का सन्न्यास में अधिकार कथमपि नहीं

माना जा सकता। यज्ञोपवीत आदि का अभाव होनेसे शबरी का सन्न्यास आश्रम में अधिकार किसी भी पक्ष में उपपन्न नहीं हो सकता। अतः वे सन्न्यासिनी नहीं थीं।

कुछ लोग स्त्रियों का भी सन्न्यास आश्रम में अधिकार प्रमाद-वशात् मानते थे, जिसका निर्देश महर्षि बोधायन ने "स्त्रीणां चैके" वचन से किया है। परन्तु मन्वादिप्रोक्त स्मृतियों से उन लोगों का कथन विरुद्ध होने के कारण महर्षि ने 'एके' कहकर उसे उपेक्षित कर दिया।

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण में शबरी को सन्न्यासिनी बतलाने वाला न तो कोई शब्द ही आया है और न ही सन्न्यासी-वेशभूषा का कोई सङ्केत ही। "श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीवनी" —वा०रा० अर०का० ७३/२६, वचन में आये 'श्रमणी' शब्द के आधार पर शबरी को सन्न्यासिनी मानना महान् भूल है; क्योंकि श्रमण शब्द मेदिनी तथा हेमचन्द्र आदि कोषों के आधार पर मुमुक्ष, वाचंयम, ऋषि, निर्ग्रन्थ,मुनि, अनगर, तपस्वी, भिक्षु आदि शब्दों का पर्याय है,केवल सन्न्यासी का नहीं।

यदि श्रमण शब्द मात्र सन्न्यासी का पर्याय होता तो श्रमणी शब्द के आधार पर शबरी को सन्न्यासिनी माना जा सकता था, वह भी थोड़ी देर के लिए; क्योंकि यज्ञोपवीत आदि का अभाव होने से उसका सन्न्यास आश्रम में प्रवेश ही प्रवाधित है। चूंकि श्रमण शब्द मात्रसन्न्यासी का पर्याय नहीं है, अतः उसके (श्रमणी शब्द के) आधार पर शबरी को सन्न्यासिनी नहीं मान सकते।

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण में वर्णित उसकी वेशभूषा के साक्ष्य से भी उसका सन्न्यासिनी होना अनुपपन्न है; क्योंकि रामायण में सन्न्यासी का काषायवस्त्र = रक्तवस्त्र सुनिश्चित है। रावण इसी वेश में सन्न्यासी बनकर विदेहजा के समीप आया था। इधर शबरी का काषायवस्त्र नहीं है,वह तो वल्कल और कृष्णाजिन के साथ ही जटा भी धारण कर रही है— "इत्युक्ता जटिलावृद्धा चीरकृष्णाजिनाम्बरा"-वा०रा०अर०का०७४/३२। कतिपय लोगों के पक्ष में सन्न्यासी के लिए जटाधारण निषिद्ध ही है।

वनवासी के लिए जटा, वल्कल और कृष्णाजिन धारण करने का उपवर्णन श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणमें मिलता है। श्रीराम-जो वानप्रस्थ या सन्न्यास आश्रम में नहीं, अपितु गृहस्थाश्रम में थे— वनवास-काल में जटा, वल्कल और कृष्णाजिन धारण करते हैं—

उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम्।	}	वा०रा०अर०का०
कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम्॥	}	९९ / २५—२६

राक्षस मारीच–जो कि सन्न्यासी नहीं है– वनवास करते हुए जटा, वल्कल और कृष्णाजिन धारण करता है–

तत्र कृष्णाजिनधरं जटावल्कलधारिणम् ।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ।। } वा० रा० अर० का० ३५/३८

इस विवेचन से निश्चित हो गया कि सन्न्यासी के लिए काषायवस्त्र शिखा आदि हैं और जो सन्न्यास नहीं हैं, अपितु श्रीराम की भाँति गृहस्थाश्रम में रहकर भी वनवासी हैं। या मारीच की भाँति ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य नहीं हैं फिर भी वनवासी होकर योगाभ्यास, तप आदि कर रहे हैं, उनके लिए जटा, वल्कल औरकृष्णाजिन धारण करना उपयुक्त है।

भक्तिमयी शबरी को 'जगामात्मसमाधिना, तापसी आदि शब्दों का प्रयोग समाधिनिष्ठ तथा तपोरत सिद्ध करता है। उनकी वेशभूषा जटा, वल्कल और कृष्णाजिन है ही। काषायवस्त्र आदि का कोई सम्पर्क उनके जीवन में नहीं दिखता, जो कि सन्न्यासी का प्रधान वेश है, अतः वे सन्न्यासिनी कथमपि नहीं हो सकतीं। सन्न्यासिनी न होने से उन्हें उसके आधार पर ब्राह्मणी भी नहीं माना जा सकता। शबरी के लिए सन्न्यासिनी अर्थ में "श्रमणी" शब्द का प्रयोग अनुपपन्न होने से उसे तापसी अर्थ का बोधक ही मानना चाहिए। श्रमणी शब्द "श्रमु तपसि खेदे च" धातु से उस अर्थ में निष्पन्न भी होता है। इधर मेदिनी आदि कोशों की भी इस अर्थ में अनुकूलता है।

शबरी ब्राह्मणी या क्षत्रिया नहीं थीं

श्रौतस्मार्तधर्मसंरक्षक, भक्तजनरञ्जक, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्र जिस किसी भी आश्रम पर गये, वहाँ उन्होंने लक्ष्मण और जानकी जी के सहित ऋषियों, मुनियों और विप्रों को चरणस्पर्श करके प्रणाम ही किया है; क्योंकि क्षत्रियवंश में प्रकट मर्यादापुरुषोत्तम की यही मर्यादा थी कि वे पत्नियों सहित ब्राह्मणों को सादर चरणस्पर्श करके प्रणाम करें। यहाँ तक की अहल्या का उद्धार करने के पश्चात् उन्होंने लक्ष्मण जी के सहित उनके चरणों को स्पर्श करके ही प्रणाम किया है। अत्रि, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य और शरभङ्ग प्रभृति महर्षियों के आश्रमों पर जाकर श्रीराम ने उनकी पदवन्दना की है। इसके प्रचुर प्रमाण श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में मिलते हैं।

श्रीराम ने किसी ब्राह्मण, ब्राह्मणी से अपना चरणस्पर्श कराया हो–ऐसा उल्लेख श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में नहीं मिलता। और न यह

मर्यादापुरुषोत्तम की मर्यादा ही कही जा सकती कि वे किसी ब्राह्मण या ब्राह्मणी अथवा पूज्यजन से अपना पादस्पर्श करायें। जब श्रीराम किसी भी ब्राह्मण या ब्राह्मणी से अपना पादस्पर्श नहीं कराते तब शबरी यदि ब्राह्मणी होतीं तो वे उनको चरणस्पर्श करके प्रणाम न करके उलटे अपना चरणस्पर्श कराकर प्रणाम कैसे करवाते? दशरथनन्दन के आश्रम पर पधारने पर शबरी ने लक्ष्मणजी के साथ उनका चरणस्पर्श किया है—

तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ } वा०रा० अर० का० ७४/६

किन्तु श्रीराम या लक्ष्मण ने उनका चरणस्पर्श नहीं किया। श्रीराम द्वारा क्षत्रियोचित मर्यादा का सर्वत्र सुपालन हुआ है। इसीलिए तो वे मर्यादापुरुषोत्तम और धर्मविग्रह कहे जाते हैं। तापसी शबरी के ब्राह्मणी होने पर वे उनको प्रणाम न करें—ऐसा सम्भव ही नहीं। क्या मर्यादापुरुषोत्तम, साक्षाद् धर्मविग्रह श्रीराम, सिद्धा तापसी शबरी के ब्राह्मणी होने पर उन्हें स्वयं प्रणाम न करके अपना ही चरणस्पर्श कराकर "क्षत्रिय द्वारा ब्राह्मण को प्रणाम करने की तथा ब्राह्मण से अपना प्रणाम न करवाने" की सनातनशास्त्रीयमर्यादा का नाशकर सकते हैं? उत्तर मिलेगा—'कभी नहीं'। अत एव शबरी द्वारा श्रीराम और लक्ष्मण को प्रणाम किये जाने तथा शबरी को राघवेन्द्र एवं सौमित्रि के द्वारा चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम न किये जाने से सुनिश्चित है कि शबरी ब्राह्मणी नहीं थीं। वे क्षत्रिया भी नहीं थीं; क्योंकि उनके क्षत्रिया होने पर, चिरजीविनी, वृद्धा तापसी शबरी से अल्पवयस्क मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम और लक्ष्मण चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम नहीं करा सकते। किन्तु उन्होंने अपना चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम कराया है, अतः वे क्षत्रिया भी नहीं थीं।

★ शबरी वैश्यजातीया भी नहीं थीं ★

ब्राह्मणी या क्षत्रिया न होने से शबरी वैश्यजाति की थीं या शूद्रजाति की? ऐसा संशय होता है; क्योंकि क्षत्रियकुलप्रसूत श्रीराघव और लक्ष्मण का चरणस्पर्श उनसे निम्नवर्ण का कोई भी वैश्य या शूद्र कर सकता है।

त्रेतायुग में वर्णाश्रम व्यवस्था अति सुदृढ़ थी। सभी व्यक्ति अपने शास्त्रानुमोदित धर्म का पालन करते थे। उस समय प्रत्येक वर्ण के कर्म सुनिश्चित थे तथा उसका पालन न करने पर राजदण्ड की बिभीषिका थी।

अतः आजकल जैसा कर्मसाङ्कर्य उस समय नहीं था। फलतः कर्म को देखकर ही लोग व्यक्तिविशेष की जाति का अनुमान कर लेते थे। वैश्य का कर्म-कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य=व्यापार तथा शूद्र का स्वाभाविक कर्म परिचर्या बतलाया गया है—

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ } भगवद्गीता १८/४४

कृषि=खेती करना, गोरक्ष्य=पशुपालन, वाणिज्य=व्यापार-ये वैश्य के स्वाभाविककर्म हैं और परिचर्यात्मक=शुश्रूषारूपकर्म शूद्र का स्वाभाविककर्म है। इनमें कृषि,पशुपालन या वाणिज्य का सम्पादन शवरी ने किया हो-ऐसा उपवर्णन श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदि ग्रन्थों में नहीं मिलता। अतः शबरी को वैश्यजातीया नहीं माना जा सकता।

❀ शबरी शूद्रजातीया थीं ❀

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के स्वाभाविक कर्म से विपरीत कर्म परिचर्या जो शूद्र का स्वाभाविक कर्म बतलाया गया है—शबरी के जीवन में सुस्पष्ट देखने को मिलता है—

तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी।
श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी॥ } वा०रा०अर० का० ७३/२६

—'हे काकुत्स्थ ! उन महर्षियों के परधाम चले जाने पर भी उनकी परिचर्या करने वाली चिरजीविनी तापसी शबरी आज भी वहाँ दिखायी देती हैं। श्रीराम से तपस्विनी शबरी स्वयं अपने परिचर्या कर्म का परिचय देती हुई कहती हैं —

चित्रकूटेत्वयिप्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः।इतस्तेदिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम्॥
तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम्। } वा०रा०अर०का०
मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी॥ } ७४/१४-२९

—'जिन महर्षियों की मैं परिचर्या करती थी, वे तुम्हारे चित्रकूट पदार्पण-काल में ही अतुल प्रभा वाले विमानों से दिव्यलोक चले गये'। —'यह जिन मुनियों का आश्रम है, उनकी मैं परिचारिणी=सेवा करने वाली=सेविका हूँ। उन भगवदनुरागियों के समीप मैं जाना चाहती हूँ'। इनमें प्रथम वचन कबन्ध का है। इससे प्रतीत होता है कि शबरी की परिचारिणी रूप में प्रसिद्धि राक्षसों तक हो चुकी थी। तभी तो वह श्रीराम को शबरी का परिचय परिचारिणी रूप में देता है।

वस्तुतः इसी प्रसिद्धि के द्योतनार्थ श्लोक में 'नाम' शब्द आया हुआ है। 'नाम' शब्द प्रसिद्धि अर्थ का भी बोधक है—

नाम प्राकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने । —अमरकोष ३/४/२५१

प्राकाश्ये यथा–हिमालयो नाम नगाधिराजः, हिमालयः प्रकाशोऽतिप्रसिद्ध इत्यर्थः । यहाँ 'हिमालयो' शब्द के पश्चात् आया 'नाम' शब्द प्राकाश्य=प्रसिद्धि अर्थ का द्योतक है। इसी प्रकार सम्भाव्य का उदाहरण— इह 'नाम' सीता भविष्यति। क्रोध का–ममापि 'नाम' दशाननस्य परैरभिभवः । उपगम का-एवं नामास्तु,उपगमः सासूयोऽङ्गीकारः। कुत्सन का—को नामाऽयं स सवितुरुदये स्वापमेवं विधत्ते । विस्मयार्थक भी नाम शब्द है— अन्धो नाम गिरिमारोहति । ये सब उदाहरण इसी प्रकार वाचस्पत्यम् वृहत्संस्कृताभिधानम् और शब्दकल्पद्रुम-कोष में क्रमशः पृष्ठ ४०३८ तथा पृष्ठ ८६१ में देखे जा सकते हैं।

'नाम' शब्द में प्रसिद्धिबोधकता होने एवं शबरी की परिचारिणी रूप में राक्षसों तक प्रसिद्धि होने से ही रामायण के प्रख्यात टीकाकार पण्डितप्रवरश्रीगोविन्दराज जी "श्रमणीशबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी" श्लोककी व्याख्यामें नाम शब्द को प्रसिद्धिपरक ही मानते हैं–'शबरी नाम शबरीति प्रसिद्धा' –वा०रा०अर०का०७३/२६ की गोविन्दराजीयटीका।

चूंकि कबन्ध वन में रहकर ऋषियों का मांसभक्षण करता रहता था और कृशकाया, वृद्धा शबरी वनवास करते हुए भगवद्–भजन में सदा संलग्न ऋषियों की सेवा करती रहती थीं। चिरजीविनी होने से दीर्घकाल पर्यन्त शबरी द्वारा की गयी परिचर्या की प्रसिद्धि यदि राक्षसों तक हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी प्रसिद्धि का द्योतन कबन्ध ने "श्रमणी शबरी नाम"–स्ववचन में 'नाम' शब्द से किया है। अतः इस 'नाम' शब्द के आधार पर उनकी 'शबरी' ऐसी व्यक्तिवाचक संज्ञा मानना उचित नहीं है। शबरी अपने परिचर्यात्मक कर्म का अनेक बार उल्लेख की हैं। कबन्ध जैसे दुर्दान्त राक्षस भी उनके परिचर्यात्मक कर्म से परिचित होनेके कारणही उन्हें परिचारिणी कहते हैं। "परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्" भगवद्गीता १८/४४, भगवद्वचन से परिचर्या शूद्र का ही स्वाभाविककर्म वतलाया जा चुका है। फलतः अपने कर्म के साक्ष्य से शबरी शूद्र जाति की ही सिद्ध होती हैं। त्रेतायुग में आजकल जैसी स्थिति नहीं थी कि चमारों के कर्म ब्राह्मण और ब्राह्मणों के कर्म चमार करते रहे हों, जिससे कर्म के साक्ष्य से जाति का अनुमान करने में बाधा आये।

प्रकारान्तर से शूद्रत्व की उपपत्ति

जातिवाचकशब्दों से आजकल भी प्रसिद्धि दिखती है। क्षत्रियजाति की नारीको ठकुराइन, चमार जातिकी महिलाको चमारिन कहकर इस समयभी पुकारा जाता है। यद्यपि ये दोनों शब्द जातिवाचकसंज्ञाहैं, तथापि लोग व्यक्ति वाचकसंज्ञा का भी कार्य इनसे चला लेते हैं। इन शब्दोंको सुनने से भले ही व्यक्ति विशेष का बोध हो, किन्तु उसके क्षत्रियत्व अथवा चर्मकारत्व का भी बोध अनुभवसिद्ध है। जब तक प्रबल प्रमाण बाधक न हो तब तक जातिवाचक शब्दों से व्यक्ति का उसकी जाति के साथ ही बोध होता है।

शबर जङ्गल में रहने वाली एक जाति विशेष है, जिसे आजकल 'भील' कहा जाता है। उस शबर जाति में उत्पन्न स्त्रीमात्र को शबरी (भीलनी) कहते हैं। फलतः शबरी एक जातिवाचक संज्ञा हुई। अतः शबरी कहने से ही शबरजाति की महिला का ज्ञान उसकी जाति के ज्ञान के साथ ही होगा। कबन्ध ने श्रीराम से-वनवासिनी चिरजीविनी महिला को शबरी-बतलाया है, साथ ही उसे परिचारिणी भी कहा है। परिचर्या शूद्र का स्वाभाविक कर्म है। इधर जातिवाचक संज्ञा शब्दों की सामर्थ्य सुनिश्चित है कि वे जाति के साथ ही व्यक्ति का ज्ञान कराते हैं। अतः- "तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी। श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी"॥ कबन्धके इस वचन से उन्हें शबरी और परिचारिणी कहने से वे 'शबरजातीया' हैं- ऐसा निश्चय दशरथनन्दन श्रीराम को हो जाना स्वाभाविक है। उनकी शबरजातीयत्व में कोई प्रमाण भी बाधक नहीं है, प्रत्युत 'परिचारिणी' पद का प्रयोग उसका साधक ही है। अत एव कबन्ध द्वारा शबरी की जाति का पृथक् निर्देश न किये जाने पर भी श्रीराम ने जटा, वल्कल और कृष्णाजिन धारण किये हुए शबरी को देख-कर भी प्रणाम नहीं किया, प्रत्युत उनके द्वारा किये गये चरणस्पर्श को स्वीकार ही किया; क्योंकि उन्हें शबरी एवं परिचारिणी इन दोनों शब्दों से उनके शबरजातीयत्व का ज्ञान जो हो गया था।

शबरी स्वयं 'चित्रकूटे.....पर्यचारिषम्, तेषामि.....परिचारिणी" इन दोनों वचनों से अपना स्वाभाविक कर्म परिचर्या बतलाती हैं, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के स्वाभाविक कर्म से विपरीत शूद्र का कर्म है। अतः वे शूद्रान्तर्गत शबर जाति की महिला थीं, ब्राह्मणी, क्षत्रिया या वैश्यजातीया नहीं। अध्यात्मरामायण में भी उन्हें हीन जाति की नारी

बतलाया गया है— "योषिन् मूढाप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा"। "अधमजन्माऽपि शवरी मुक्तिमाप सा"॥—अर० का० १०/१७-४२। पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने भी इन्हें भीलनी लिखा है। इससे भी मेरे कथन की पुष्टि हो रही है।

इस विशद विवेचनसे सिद्ध हुआ कि शवरी श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण के अनुसार शूद्रान्तर्गत शवर (भील) जातिकी भक्तिमयी महिला थीं। उन्हें सन्न्यासिनी या ब्राह्मणी अथवा क्षत्रिया किंवा वैश्यजातीया नहीं मानाजा सकता। ऐसा मानने वालों का कथन उक्त विवेचन से निरस्त हो गया।

तापसी आदि शब्दों के प्रयोग की उपपत्ति

यदि कहें कि—

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥ } भगवद्गीता १८ / ४२

इस भगवद्वचनसे तप ब्राह्मणका ही स्वाभाविककर्म बतलाया गया है, शूद्रका नहीं। उसका तो स्वाभाविककर्म परिचर्या ही है। वनवासिनी शवरी जो मतङ्ग आदि ऋषियोंकी विनम्रभावसे सेवा करती रहीं, वें शूद्र के लिए शास्त्राननुमोदित तपः कर्म कैसे कर सकती हैं ? वह भी उस युगमें, जबकि वर्णव्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी। जब अपने आश्रमके लिए विहितकर्म का त्याग और निषिद्धकर्म के आचरण पर जनसाधारण राजदण्ड का भागी होता था। और कम से कम भगवान् श्रीराम जो तपोरत शूद्र शम्बूक का शिरच्छेदन स्वयं अपने हाथ से करते हैं, वे शूद्रमहिलाशवरी को तपश्चर्या में प्रवृत्त देखकर उसे दण्ड देने के बजाय उसका आतिथ्य ग्रहण करें, अपना चरणस्पर्श करायें और उससे पूछें कि 'तुम्हारा तप बढ़ रहा है न – "क्वचित्ते वर्धते तपः"—वा०रा०अर०का० ७४/८।

शवरी को शूद्रजातीया मानने पर ये विसङ्गतियाँ खड़ी हो जाती हैं। भला एक शूद्रमहिला वह भी त्रेता जैसे युगमें तापसी कैसे हो सकती है ? परिचर्या तो अपने गुरु की ब्रह्मचारी भी ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवेश करने के पश्चात् करता है। इसलिए परिचर्याकर्म के आधार पर शबरी को शूद्रजातीया मानना उचित नहीं। उन्हें वैश्य जातिकी महिला मान लेने पर भी तप और परिचर्या इन दोनों कर्मोंकी उपपत्ति हो सकती है।

श्रीमन् ! आप शबरीके लिए तापसी शब्दका प्रयोग तथा' क्वचित्ते वर्धतेतपः" वचन को देखकर घबड़ा गये हैं। घबड़ानेकी कोई जरूरत नहीं।

शूद्र के लिए द्विजाति की परिचर्या ही तप है । वेद में शूद्र द्वारा की जाने वाली परिचर्या को 'तप' शब्दसे कहा गया है– 'ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं,मरुद्भ्यो वैश्यं,तपसे शूद्रम्'—यजुर्वेद३०/४।।

'वेदज्ञानादि हेतु ब्राह्मण,रक्षादिकार्यार्थं क्षत्रिय,मरुद्गणों से कृषि आदि को समृद्ध करनेके लिए वैश्य तथा परिचर्यात्मक तप:केलिए शूद्रको नियुक्त करे'।

अत: श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण में परिचर्यात्मक तप के कारण ही शबरी को तापसी कहा गया है और इसी तप की वृद्धि के विषय में भगवान् ने पूछा भी था । शम्बूक इस प्रकार का परिचर्या रूप तप न करके अधोमुख होकर अन्य प्रकार का तप कर रहा था, जिससे उसका शिरच्छेदन हुआ । 'जो लोग 'तपसे शूद्रम्' वचनमें तप शब्दका वास्तविक तप रूप अर्थ ही ले रहे हैं, परिचर्या रूप अर्थ नहीं । उन्हें मेरी राय है कि उसी "तपसे शूद्रम्" प्रमाण से कृपया यह भी समझ लें कि तपमें शूद्रकाभी अधिकार है । इसीलिए शबरीको तापसी कहा जाना और उसके तप की वृद्धि के विषय में पूछा जाना उपयुक्त' है । ऐसे झम्पूदासों को और क्या उत्तर दिया जाय ! और जो यह कहा गया कि– 'परिचर्या तो अपने गुरु की ब्रह्मचारी भी ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् करता है'— ठीक है; क्योंकि वेदाध्ययनाङ्ग उपनयन जब तक सम्पन्न न हो जाय तब तक वेदाध्ययन वटु करेगा कैसे ? वेदाध्ययन–काल में आवश्यक नियमों का पालन करते हुए वह गुरु की परिचर्या करता ही है । किन्तु श्रीमान् जी ! जरा यह बतलाइए कि उपनयन संस्कार क्या नारियों का हो सकता है ? उत्तर मिलेगा—"कभी नहीं" । फिर शबरी जी उपनयन न होने से वेदाध्ययन और उस काल में गुरु परिचर्या कैसे करेंगी ? नहीं कर सकती हैं न ? तब आपने उनके परिचर्या की उपपत्ति जिस ढंग से करनी चाही वह तो नहीं हो सकती है न? हाँ, महिलाओंके लिए कोई ऐसा विधान होता कि वे भी ब्रह्मचारी जैसे संस्कारयुक्त होकर परिचर्या आदि कर सकतीं, तब आपका कथन मान्य हो सकता था । किन्तु ऐसा तो है नहीं, अत: आपका कथन निर्मूल है ।

'तौ तु दृष्ट्वा तदा सिद्धा'—वा०रा०अर०का० ७४/६, इत्यादि वचनों में शबरी को सिद्धा इसलिए कहा गया कि उन्हें सिद्धियाँ प्राप्त थीं । योगमें चारों वर्णोंका अधिकार शास्त्रसिद्ध है— 'ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीशूद्राणां च पावनम् । शान्तये कर्मणामन्यद्योगान्नास्ति विमुक्तये ।। इत्यादिपुराणवाक्येषु प्राणिमात्रस्य योगेऽधिकार उपलभ्यते ।'

–हठयोग प्रदीपिका १/११ की ज्योत्स्नयोटीका ।

अत:शबरीको अपने सेव्य ऋषियोंसे योगादि की शिक्षा मिली होगी, अथवा उन्हें भगवन्नाम-जपका आदेश ऋषियोंने दिया होगा; क्योंकि ऋषि परम दयालु होते हैं । वे अपने समीपस्थ, उस पर भी परिचर्या करने वाले का उद्धार अपना आवश्यक कर्तव्य समझते हैं । अत: भगवन्नाम के अधिक जप से शबरी को सिद्धिलाभ कोई आश्चर्यजनक कार्य नहीं है ।

दूसरी बात यह कि–

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर: ।
स्वकर्मनिरत: सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।।
यत: प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव: ।। } भगवद्गीता १८/४५-४६

इत्यादि प्रमाणों से यही बतलाया गया है कि अपने–अपने कर्म में निरत प्राणी को परमपदरूपा सिद्धि मिलती है । वह अपने सत्कर्मों से सर्वव्यापी परमात्मा की आराधना करके अर्थात् सत्कर्म भगवान् को समर्पित करके परमपदरूपा सिद्धि प्राप्त करता है । शबरी जीवन पर्यन्त शास्त्रविहित परिचर्यात्मक कर्म करती ही रहीं और उसी से परमात्मा श्रीराम की अभ्यर्चना भी कीं, जिससे प्रसन्न होकर प्रभु ने कहा– हे भद्रे ! तुमने मेरी अर्चना की है, इसलिए तुम अपने अभीष्ट को प्राप्त करो—

"अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम्"–वा०रा०अर०का०७३/३९

तत्पश्चात् शबरी अग्नि में अपने शरीर की आहुति देकर परमधाम को प्राप्त कीं–

'अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने ।
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह ।। } वा०रा०अर०का० ७४/३२–३३

यहाँ स्वर्गपद अपुनरावृत्ति भगवल्लोकका वाचक है; क्योंकि महर्षियों ने शबरीसे यही कहा था कि तुम्हारे आश्रम पर श्रीराम आयेंगे,उन दिव्य अतिथि के सत्कार और दर्शन से तुम अक्षय लोक को प्राप्त करोगी—

तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभि: ।
आगमिष्यति ते राम: सुपुण्यमिममाश्रमम् ।।
स ते प्रतिगृहीतव्य: सौमित्रि: सहितोऽतिथि: ।
तं च दृष्ट्वा वराँल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि।। } वा०रा०अर०का० ७४/१५–१६

सभी जानते हैं कि स्वर्ग क्षयिष्णु है । अत: महर्षि प्रोक्त इन वचनों के अनुसार "स्वर्गमेव जगाम ह" श्लोक में आया स्वर्ग शब्द अक्षयलोक

भगवद्धाम का ही वाचक है; क्योंकि "यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्त-मनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम्" अभियुक्तोक्ति के अनुसार स्वर्गशब्द अभिधाशक्त्या भगवद्धामका वाचक महापण्डित अप्पय दीक्षित ने माना है--- "यन्न दुःखेनसम्भिन्नमित्यादिश्लोकस्तत्कृतनिर्वचन स्वर्गशब्दश्च मुख्यवृत्त्या परमेश्वर पद एव स्वारसिकःकथञ्चिदिन्द्रादिपदे-ष्वपि वर्तते जनाधिपेष्विवेश्वरशब्द इतिभावः"— श्रीकण्ठभाष्य १/३/२५ की शिवार्कमणिदीपिका । अत एव अध्यात्मरामायाण में भी शवरी को भगवद्धाम ही प्राप्त होने का उल्लेख है—

"मुहूर्तं तिष्ठ राजेन्द्र यावद्दग्ध्वा कलेवरम् । } अर०का०
यास्यामि भगवान् राम ! तव विष्णोः परं पदम् ॥ } १० / ४०

"वराँल्लोकानक्षयान्" में वहुवचन भगवल्लोक में अन्यलोकों की अपेक्षा ज्यायस्त्व के कारण हुआ है ।

इस प्रकार भगवद्धामरूप सिद्धि-जिसे महर्षियोंने "तं च दृष्ट्वा वराँल्लो-कानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि" से कहा था, श्रीरामका दर्शन करने से उनके अति सन्निकट है, अतः शवरीको भगवान् राघवेन्द्रके साक्षात्कारोत्तर दो वार सिद्धा कहा गया है-

तौ तु दृष्ट्वा तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः । } वा०रा० अर०
रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा साधुसम्मता ॥ } का० ७४/१०

शबरीको योगबल से आगत, अनागत सभी विषयों का ज्ञान भी था-
राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमवहिष्कृताम् ।-वा०रा०अर०का०७४/१६

दासीपुत्र विदुर भी इसी प्रकार के ज्ञानी थे । यहाँ विज्ञान का परमात्मविषयकज्ञान अर्थ करनेमें कोई अनुपपत्ति नहीं है । पूर्वजन्मकी तप-श्चर्या और गुरुकृपासे प्राप्त होनेवाला दृढ़ज्ञान उन्हें किसी प्रतिबन्धकवशात् नहीं हो पाया था । जो शवरी जन्म में महर्षियों की निष्ठापूर्वक सेवा के द्वारा प्राप्त श्रीरामचन्द्र के साक्षात्कार से सम्पन्न हो गया ।

इस प्रकार हीनजातिसमुद्भूत शवरी में 'तापसी' 'सिद्धा' 'विज्ञाने नित्यमवहिष्कृताम्' 'जगामात्मसमाधिना' आदि शब्दोंके प्रयोगकी उपपत्ति की गयी । एवञ्च सम्पूर्ण वाक्यों के सामञ्जस्य से सिद्ध हो गया कि शवरी ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, किंवा सन्न्यासिनी नहीं थीं, अपितु हीन-जाति समुत्पन्न शूद्रा थीं । जो परमात्मा श्रीराम का साक्षात्कार करके मोक्ष जैसे पद को प्राप्त कीं । वे अपने कर्म से महान् बनीं ।

❀ शबरी का पूर्व जन्म ❀

शबरी के विषय में प्रसिद्ध है कि ये पूर्व जन्म में एक महारानी थीं। हृदय सात्विक होने के कारण भगवान् और उनके भक्तों में इनकी अपूर्व निष्ठा थी। फिर भी राजमहल के नियमानुसार इन्हें सन्तों से यथेष्ट सत्सङ्ग का लाभ नहीं प्राप्त होता था। एक बार तीर्थराज प्रयाग में ये इस आशा से पहुँचीं कि वहाँ त्रिवेणीस्नान और जङ्गम तीर्थराज साधु समाज से जीवन-लाभ प्राप्त करने का सुअवसर मिलेगा, किन्तु हुआ इसके विपरीत, राजकीय व्यवस्था के अनुसार इन्हें महारानी होने के कारण परदे के भीतर स्नानादि करना पड़ा जिससे सत्सङ्ग से वञ्चित हो गयीं। इससे इन्हें अपने रानीपने और उच्चकुलके कारण बहुत क्षोभ हुआ। इसलिए त्रिवेणी-स्नान करते समय इन्होंने ग्लानिपूर्वक यही वर माँगा कि दूसरे जन्म में मैं निम्नकुल में जन्म लूँ जिससे सन्तों के दर्शन और सेवाका लाभ मिल सके। त्रिवेणीकी कृपासे यही जाकर अगले जन्ममें शबरी बनीं। अपने विवाहके अवसरपर सैकड़ों पशुओंको बरातियोंके भोजन हेतु उपस्थित देखकर इनका हृदय चीत्कार कर उठा। ये उन पशुओंका बन्धन रात्रि में काटकर स्वयं अपना संसार-बन्धन काटने के लिए जङ्गल में सन्तों की सेवा करने चल पड़ीं। पूर्व जन्म के पुण्यातिरेक से वैराग्य के कारण गुप्तरूप से सन्तों की सेवा-जैसे लकड़ी पहुँचाना, मार्ग साफ करना आदि करती थीं; महर्षि मतङ्ग को इनकी इस कर्तव्यपरायणता से अति प्रसन्नता हुई। उन्होंने इन्हें श्रीराम मन्त्र का उपदेश किया। दीर्घकाल तक ये महर्षि और उनके शिष्यों की सेवा करती रहीं। जब वे लोग भगवद्धाम जाने लगे तब इनसे बोले-"शबरी ! तुम इस आश्रम में इसी प्रकार अपना जीवन बिताओ। कुछ काल के पश्चात् निखिल-ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीराम तुम्हें यहीं दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे, जिसके फलस्वरूप तुम भगवद्धाम प्राप्त करोगी।

शबरी ने वैसा ही किया। जब भगवान् राघवेन्द्र अनुज लक्ष्मणके साथ इनके आश्रम पर पधारे, तब इन्होंने भक्तिपूर्वक उनका चरण पखार कर आतिथ्य सत्कार किया तथा उनके सामने ही योगाग्नि में शरीर जलाकर भगवद्धाम प्राप्त कर लिया। ये भक्तिमयी शबरी परमधन्य हैं।

"इत्ययोध्यानगरीस्थश्रीमणिरामछावनीपीठाधीश्वरश्रीनृत्यगोपालदासजी महाराजेभ्यो लब्धदीक्षेण आचार्यसियारामदासनैयायिकेन कृते 'भ्रान्तिगिरिभङ्गे' जातिविमर्शभङ्गः पूर्णः" ॥